सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 55 ; अंक : 11-12
फरवरी-मार्च 2023

प्रकाशन तिथि : 01.03.2023

मूल्य - एक प्रति : 22/-, द्विवार्षिक : 400/-

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युपन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।।

– चाणक्य सूत्र

वह महान है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यंभावी है।

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

– अष्टावक्र गीता

सत्य बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे–तैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्य बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।

– कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 55 फरवरी–मार्च 2023 अंक : 11–12

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।

अर्थात्

सर्वत्र समदर्शन वाला योगयुक्त योगी सब भूतों में अपने को तथा अपने में सब भूतों को अवस्थित देखता है।

●●●

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख– *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	प्राण निरोध से चित्त वृत्ति निरोध	12
4.	श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा– डॉ. विजय सिंह	17
5.	लीला धारी की लीलाएँ– जगदीश राए बंसल	21
6.	शैव योग– डॉ. श्री नलजिन्नाथ पण्डित	27
7.	त्रिगुणात्मक मन को कैसे जानें ?– श्री इन्द्रप्रताप सिंह	34
8.	श्री आनन्दकन्द प्रभु जी का प्राकट्य दिवस	40

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1000.00

विशेष लेख

साधना स्थली एवं योगी का आहार

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

प्राणायाम एक हठ योग का अंग है। अतः प्राणायाम के साधक को हठोपयोगी नियमों का पालन करना चाहिए। इससे पहले लेख में हम बतला चुके हैं कि हठ योग का अधिकारी कौन होता है, प्राणायाम के अधिकारी को अत्यन्त उत्साही, वीर्यवान, संयमी, एवं विविक्तसेवी होना चाहिए। हमारे शास्त्रों का लेख है।

हठ विद्या परं गोप्या योगिना सिद्धिच्छिता भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता।।

जिस प्रकार से योग का अधिकारी अपने यम नियमादि का पूर्ण (रूपेण) पालन करता है। इसी प्रकार से हठ विद्या के अभ्यासी को अपनी साधना गुप्त रखना चाहिए। गुप्त रूप से की गई साधना बल की दात्री होती है। जो लोग इस विद्या को बाजार में प्रदर्शित करते रहते हैं औ व्यापार का एक साधन बना चुके हैं, उनको यह विद्या नहीं देनी चाहिए। क्योंकि उनका काम तो उदर पालन ही बना रहता है उनको किसी प्रकार का वैराग्य नहीं है। श्री याज्ञवल्क्य मुनि अपनी स्मृति में कहते हैं—

विध्युक्त कर्मसंयुक्तः,
काम संकल्प वर्जितः।
यमैश्च नियमैर्युक्तः,
सर्व संग विवर्जितः।।
कृत विद्यो जितक्रोधः,
सत्य परायणः।
गुरु शुश्रूषणरतः,
पितृमातृ परायणः।।
स्वाश्रमस्थः—सदाचारो,
विद्वद्भिश्च सुशिक्षितः।।

अर्थात् जो व्यक्ति विधि युक्त कर्म करने वाला काम संकल्प से रहित यम नियमों का पालन करने वाला सब प्रकार के संग दोषों से दूर रहने वाला, विद्वान क्रोध रहित, सत्य धर्म परायण, गुरुचरणारविन्द एवं माता–पिता का चरण सेवक, ब्रह्मचर्य गृहस्थादि किसी आश्रम का सेवन करने वाला, जिसने विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की हो, ऐसा व्यक्ति हठयोग विद्या का अधिकारी होता है।

हठयोगी का स्थान

हठयोग प्रदीपिका के रचयिता योगी आत्माराम ने हठयोग साधन के स्थान का निर्देशन अपनी हठयोग प्रदीपिका में निम्नांकित श्लोकों में भली प्रकार इस प्रकार किया है–

सुराज्ये धार्मिके देशे,
सुभिक्षे निरुपद्रवे।
धनुः प्रमाण पर्यन्तम्,
शिलाग्नि जल वर्जिते।।
एकान्ते मठिका मध्ये,
स्थातव्यं हठयोगिना।।

अर्थात् हठयोगी को ऐसे देश में अपने हठाभ्यास को मठ बनाना चाहिए जहाँ के शासक धर्म–परायण हों एवं वह देश सब प्रकार के धन–धान्य से पूर्ण हो, जहाँ किसी प्रकार के उपद्रव न होते हों, अकाल, वर्षा आदि से पीड़ित न हो। जहाँ पर साधु अपनी भिक्षा वृत्ति का पूर्ण रूपेण पालन कर सके। ऐसे पवित्र स्थान में लम्बे समय तक साधना की जा सके जो स्थान तुषार–पात, जल एवं अग्नि से वर्जित हो। वहाँ पर चार हाथ चौकोर भूमि शुद्ध पवित्र करके हठाभ्यास के उपयुक्त मठ को बनावें और उसमें निवास करें। दृढ़तापूर्वक अपना अभ्यास करता जाये।

योगी का साधना मन्दिर कैसा हो ?

योगी को कैसे मठ में साधना करनी चाहिए इसका भी वर्णन श्री योगी आत्माराम ने हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार से किया है–

अल्पद्वारमरन्ध्रगर्त विवरं,
नात्युच्च नीचायतम्।
सम्यग्गोमय सांद्रलिप्त–
ममलं निःशेषजन्तूज्झितं।।

वाह्ये मंडप वेदि कूप,

रुचिर प्रकार संवेष्टितं।

प्रोक्तयोग मठस्य लक्षण–

मिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः।।

अर्थात् साधनोपयोगी मठ किस प्रकार का होना चाहिए उसका वर्णन करते हैं। जिसका मुख्य द्वार बहुत छोटा सा हो और किसी प्रकार के खिड़की जंगले उसमें नहीं रखने चाहिए। क्योंकि प्राणायाम करने वाले योगी का शरीर अग्नि से तपाये हुए सोना, चाँदी आदि धातुओं के समान बहुत ही तरल एवं निर्मल रहता है। कदाचित खिड़की जंगले आदि रखने से यकायक वायु के लगने से योगी के शरीर मे पक्षाघात आदि का भय अनवरत बना रहेगा। अतः हठाभ्यासोपयोगी मठ में किसी भी प्रकार के छिद्र आदि नहीं रखने चाहिए और उसके मुख्य द्वार को छोटा ही रखना चाहिए, जिससे किसी प्रकार का उपद्रव द्वार से भी न हो सके। मठ का मुख्य द्वार उत्तराभिमुख होना चाहिए। उस मठ में किसी प्रकार के गड्ढे विवर भी नहीं होने चाहिए। हठाभ्यास की भूमि बिल्कुल समतल ही होना उपयुक्त है। घरों के अन्दर जिस प्रकार चूहे आदि अपना बिल खोद लिया करते हैं, इस प्रकार के कोई भी विवर हठमठ में अन्तराय जनक हैं। वह मठ न तो बहुत ऊँचा ही होना चाहिए और न बहुत नीचा हो। क्योंकि यदि ऊँचा होगा तो चढ़ने में कष्ट रहेगा और नीचा होगा तो उतरने में कष्ट होगा। हठयोगी का वह स्थान भली प्रकार अच्छे गोबर से लिपा हुआ और छोटे–जन्तुओं मच्छर खटमल आदि जन्तुओं से रहित होना चाहिए। उस मंडप के बाहर चारों ओर दीवार रहनी चाहिए और दीवार के अन्तर्गत वेदी मंडप कुआँ आदि सुन्दर बने होने चाहिए। इस प्रकार के पवित्र मठ का वर्णन हठाभ्यासी को सिद्धों ने अपने ग्रन्थों में किया है। नन्दिकेश्वर पुराण में हठ मठ का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है।

मन्दिरंरम्यविन्यासं,

मनोज्ञं गंधवासितम्।

धूपामोदादिसुरभि

कुसुमोत्करमण्डितम्।।

मुनि तीर्थ नदी वृक्ष

पद्मिनी शैल शोभितं।

चित्र कर्म निबद्धं च

चित्र भेद विचिचित्रतम्।।

कुर्याद्योगग्रहंधीमा–
न्सुरम्यं शुभ वर्त्मना।
दृष्टांचित्रगतांछांता–
न्मुनीन्याति मनः शमम्।।
सिद्धान्दृष्टा चित्रगता–
न्मतिरभ्युद्यते भवेत्।।

अर्थात् योग मंदिर की रचना अत्यन्त रमणीय, मन को प्यारी लगने वाली एवं जिसमें दिव्य गन्ध का हर समय वास होना चाहिए। योग मंडप पर सुगन्धित पुष्पों की लतायें फैली हुई हों जिससे दिव्य सुगन्ध हर समय आती रहे। वह भूमि तीव्र तपस्वियों और मुनियों से आवासित हो गंगा–आदि कोई पवित्र नदी वहाँ बहती हो। अथवा तीर्थ–स्थली हो वहाँ पर छोटे–छोटे जलाशयों में अथवा नदी के प्रान्त में कमलिनी खिली हुई हो। बड़े–बड़े सुन्दर हरे–हरे वृक्ष हों। योगमठ में बड़े–बड़े सुन्दर चित्र लिखे गये हों चित्रों में शान्त मुनियों के तपस्वियों एवं सिद्धों के चित्र वहाँ लिखे रहने चाहिए क्योंकि सिद्ध मुनियों के चित्र देखने से साधक के मन में एक उत्साह पैदा होता है। उस योग मंडप में किसी भी प्रकार का अशुभ चित्र न हो वह मठ सब प्रकार की मंगलमयी भावनाओं से पूर्ण हो उस मठ में सुन्दर–सुन्दर वेद मन्त्र एवं चौपाइयाँ लिखी हुई हों जिनको पढ़कर साधक का पूर्ण उत्साह बढ़े।

योगाचार्यों का आदेश

एवं विधे मेठ स्थित्वा
सर्व चिन्ता विवर्जितः।
गुरुपदिष्ट मार्गेण
योग मेव समभ्यसेत्।।

अर्थात् सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होकर इस प्रकार के सुन्दर मठ में बैठकर गुरु पदिष्ट मार्ग से योगाभ्यास करें। ऐसा करने से योगी सिद्धि भाजन बन जाता है। हठाचार्यों ने उपरोक्त योगस्थली का वर्णन किया उसके साथ–साथ कुछ और भी आवश्यक एवं पालनीय नियम हैं जिनका पालन करने से साधक जल्दी ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया करता है। जगदात्मा अखिल लोकपावन श्री कृष्णचन्द्र पने गीता में अपने मुखरविन्द से स्वयं कथन किया है।

युक्ताहार विहारस्य
युक्त चेष्टस्य कर्मसु।

युक्त स्वप्नावबोधस्य

योगी भवति दु:खहा।।

अर्थात् जिस योगी साधक का आहार एवं विहार समयोचित है और जिसकी हर चेष्टा समय के विभागानुसार है जो ठीक समय पर सो जाता है और ठीक समय पर उठ जाता है योग साधना उसके सब प्रकार के दु:ख द्वन्द्व का नाश कर देती है। जिस व्यक्ति ने अपने आहार विहार पर संयम किया है उसके लिए योगाचार्यों का शुभ आदेश निम्नांकित श्लोक में स्पष्ट रूप से दिया गया है।

ब्रह्मचारी मिताहारी

त्यागी योग–परायण:।

अब्दादूर्ध्व भवेत्सिद्धो

नात्र कार्या विचारणा।।

अर्थात् जो साधक ब्रह्मचारी और मिताहारी है त्यागी एवं योग परायण है वह केवल एक वर्ष में ही सिद्ध हो जाता है। इसमें कोई भी शंका की बात नहीं है।

मिताहार का लक्षण

सुस्निग्ध मधुराहार–

श्चतुर्थांशाविवर्जित:।

भुज्यते शिवसंपीत्ये

मिताहार: स उच्यते।।

हमारे आचार्यों ने उदर के चार भाग माने हैं उनमें साधक को चाहिए कि पेट के दो भागों को सुस्निग्ध एवं मधुर आहार से पूरित करे एक भाग को जल से और चौथे भाग को प्राण वायु की गति के लिए खाली रहने दे। जो लोग इस नियम को ख्याल में रखते हुए युक्ताहार करते हैं इसी का नाम मिताहार है और वे ही लोग मिताहारी कहलाते हैं।

योगी का आहार

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं

गव्यं धातु प्रपोषणम्।

मनोमिलषितं योग्यं,

योगी भोजन माचरेत्।।

अर्थात् पुष्टि कारक मधुर चिकना गौ का दूध धातुओं के प्रपोषण करने वाले मनोमिलषित भोजनों को योगी करें। अर्थात् योगी को सात्विक आहार का ही सेवन करना चाहिए और वह

सब उपयुक्त मात्रा में करना चाहिए। सात्विक भोजन का लक्षण जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण ने गीता में इस प्रकार बतलाया है।

आयुसत्वबलारोग्य
सुखप्रीतिविवर्धनः।
रस्या स्निग्धा स्थिरा हृद्या
आहारः सात्विकः प्रिया।।

अर्थात् जो आहार बुद्धिवर्धक हों, आयु को बढ़ाने वाले हों, स्वास्थ्यवर्धक हों, निरोगता को देने वाले हो, सुख और प्रेम को बढ़ाने वाले हों, चिकने जिनकी शक्ति कायम रहने वाली, हृदय को बल देने वाले, इस प्रकार के आहार सात्विक कहलाते हैं एवं ये आहार सतोगुण प्रकृति वाले को ही प्यारे होते हैं। इस प्रकार के अन्नों में गौ का दूध, गौ का घी, गेहूँ, चावल, शहद, मिश्री, लौकी, घिया, परमल एवं कन्दमूल फलादि ही योगी के लिए उचित आहार है। इस प्रकार के साधक बहुत जल्दी सिद्धि को पा जाया करते हैं।

जो भाग्यवान योगी साधक अपनी इन्द्रियों के ऊपर जय प्राप्त कर लेते हैं वह संसार में कौन सी सिद्धि को नहीं पा सकते। अजर अमर हो जाना उनके लिए अत्यन्त सहज एवं खेल जैसी चीज है।

सिद्धेविन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।

अर्थात् जिसने प्रयत्न करके बिन्दु जय कर लिया है, लोग संसार में कौन सी सिद्धि नहीं पा सकते अर्थात् सभी कुछ पा सकते हैं।

दृढ़ संकल्प

वह कौन सी वस्तु है जो मनुष्य को अपने कार्य पर दृढ़ पूर्वक जमा देती है? वह कौन सा पदार्थ है जिससे मनुष्य निरा के अंधकार में रहते हुए भी आशा के प्रकाश की झलक देखा करता है? वह क्या चीज है जो मनुष्य को विपत्ति सहने में धैर्य देती है। वह क्या चीज है जो दुःख में भी मनुष्य को आनन्द से सुख–सम्पन्न दिखाती है? वह क्या चीज है जो दरिद्रता के पंजे में फंसे मनुष्य को आश्वासन देती रहती है? वह कौन सी वस्तु है जो लाखों विपत्तियों के घिरने पर भी उसे धीरतापूर्वक खड़ा रहने का बल देती है?

दृढ़ संकल्प ही वह चीज है जो हमसे जोर से कहते हैं कि अपने लक्ष्य की ओर कदम उठा दो। वही हमारी आत्मा है, हमारी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि है, वही हमारा पथ–प्रदर्शक है। वही हमारी विघ्न–बाधाओं पर जय प्राप्त कर हमारे रास्ते साफ करते हैं। *–श्रुतिसार*

सम्पादकीय—

सिद्धयोग—हमारी प्यारी पत्रिका

आचार्य (डा.) दासलाल शर्मा

प्रिय पाठकगण/गुरु भाइ—बहिन,

जय गुरुदेव की!

क्षण—क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका **'सिद्धयोग'** अपनी आयु के 53 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 54वें वर्ष में प्रवेश कर जाएगी। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्त्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ—साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरुकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र—पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धान्तिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है—**आत्मा व अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मनतव्यः निदिध्यासितव्यः।** अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्त्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान—योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रंथों में शक्तिपात की अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमंत्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने सिद्धयोग परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग

जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गई। पत्रिका के पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है, किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन हैं–''**संशयात्मा विनश्यति**'' अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए ''**सिद्धयोग**'' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि–**स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्** अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमंत्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेव जी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में, मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क रु. 230/– हो गया है तथा आजीवन शुल्क रु. 1500/– हो गया है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सँवाई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभुजी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

श्री रामनवमी योग महोत्सव दिनांक 28, 29 व 30 मार्च को मनाया जाना निश्चित

हो चुका है।

सभी गुरु भक्तों को चाहिए कि श्री रामनवमी के पवित्र उत्सव पर धाम पर पहुँचें तथा गुरुदेव की कृपा को प्राप्त करें। जो यह मानते हैं कि गुरुदेव तो हैं नहीं वहाँ जाकर क्या करेंगे यह उनकी महान भूल है। गुरुदेव की शक्ति तो अनवरत बरसती रहती है गुरुदेव कहा करते थे कि श्री सिद्धगुफा से ही सारी दुनिया को योग का प्रकाश मिल रहा है। अतः सभी आश्रम की शाखाओं के संचालकों को चाहिए स्वयं भी आवें और अन्य गुरु भक्तों को भी पवित्र धाम के दर्शन करावें ताकि योग ध्यान में उत्तरोत्तर उन्नति पा सकें। जीवन में यदि आत्म दर्शन पा लिया तो अत्युत्तम बात है अन्यथा **'महती विनष्टि'** महान संपात की बात है—बहुत बड़ी हानि की बात है। अतः आत्मदर्शन का लक्ष्य सामने रखते हुए **'कार्यम् वा साधेयम् देहं वा पातेयम्'** अर्थात् या तो आत्मसिद्धि रूप महान कार्य को सिद्ध करूँगा या मेरा देह पात हो जाए तब भी कोई चिन्ता न मानते हुए सतत् आत्म लाभ की ओर अग्रसर रहना चाहिए। भौतिक भोगवाद प्रपञ्च है अपने साथ धोखा है। अतः सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणपण से लग जायें।

अन्त में, मैं उन सभी सुधी लेखक बन्धुओं, विद्वानों को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिनके सुन्दर एवं योग परक लेखों के कारण पत्रिका की गरिमा व लोकप्रियता बनी हुई है। जो इसके ग्राहकों को प्रेरणा देकर उन्हें लाभ पहुँचा रहे हैं वे भी धन्यवाद के भागी हैं तथा स्तुत्य हैं।

जय गुरुदेव जी की।

आपका

डॉ. दासलाल योगाचार्य

सम्पादक–सिद्धयोग

आवश्यक सूचना

मार्च अंक के साथ ही साधकों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो जाता है। अतः ग्राहकों को नये वर्ष के लिये मार्च 2023 तक अपने शुल्क कार्यालय में जमा कर देना चाहिए। पत्रिका का वार्षिक शुल्क रु. 230 हो गया है और आजीवन शुल्क (10 वर्षीय) 1500 रु. है। इसके साथ ही विद्वान लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी योग परक सुन्दर लेख भेजते रहें। यही साधकों की गुरु दक्षिणा होगी। सभी को पत्रिका का ग्राहक बनना चाहिए। गुरुदेव से जुड़े रहने का यह सशक्त माध्यम है। स्वाध्याय पुण्य अर्जन का मुख्य साधनों में से एक है। अतः स्वाध्यायरत रहना चाहिए हर साधक को।

सम्पादक सिद्धयोग मासिक

श्री सिद्धगुफा, सवांई,

एत्मादपुर (आगरा)–283202

प्राण निरोध से चित्त वृत्ति निरोध

पूर्व में मैंने यह बतलाने का प्रयास किया गया था कि वे कौन–कौन से उपाय हैं जिनसे प्राण स्पन्दन का निरोध हो सकता है क्योंकि योगियों में यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वृत्ति निरोध के लिए प्राण स्पन्दन का निरोध आवश्यक है। प्राण स्पन्दन के निरोध के उपाय के रूप में योग वाशिष्ट के कतिपय श्लोकों का आधार लिया गया था। इसी क्रम में निम्न श्लोक द्रष्टव्य है।

तालुमूलगतां यत्नजिह्वयाक्रम्य घंटिकाम्।
ऊर्ध्वरन्ध्रगते प्राणे प्राणस्पन्दो निरूध्यते।।

अर्थात् तालु के मध्यभाग में एक लटकती हुई माँसखण्ड है जिसे कोई–कोई छोटी–छोटी जिह्वा भी कहते हैं। उस कपाल कुहर या जिह्वा मूल में जिह्वा को उल्टकर लगाये जाये तो प्राण स्पन्दन रुक जाता है। इस क्रिया को योग शास्त्र में लम्बिका योग भी कहा गया है इसे ही खेचरी मुद्रा या नभोमुद्रा भी कहते हैं। खेचरी को करने के लिए छेदन, दोहन और चालन की क्रिया करनी होती है। हठयोग प्रदीपिका में भी इसका निरूपण हुआ है यथा–

छेदन चालन दोहैः कलां क्रमेण प्रवर्धयेत्तावत्।
सा यावद्भ्रूमध्यस्पृशयति तदानीं हि खेचरी सिद्धिः।।

अर्थात् छेदन चालन तथा दोहन से जिह्वा को तब तक बढ़ावे जब तक कि भ्रूमध्य का स्पर्श न कर लें। जिह्वा के अधोभाग में एक तन्तु होती है जिससे जिह्वा संयुक्त रहती है उसको धीरे–धीरे बांस की तन्तु से छेदन करना चाहिए। 'चालन' क्रिया में जिह्वा को गीला वस्त्र लपेटकर धीरे–धीरे दाँये–बाँये घुमाया जाता है। दोहन क्रिया में जैसे दूध को दुहा जाता है उसी प्रकार से जिह्वा को लम्बा करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार से जिह्वा को लम्बा करके उसे कपाल–कुहर में ही प्रवेश कराया जाता है। कपाल कुहर में ही सुषुम्ना का द्वार है। इस प्रकार से योगी लोग खेचरी का अभ्यास करके प्राण स्पन्दन को निरुद्ध कर देते हैं। जिससे स्वतः ही चित्तवृत्ति का निरोध होने लगता है। खेचरी मुद्रा के बारे में मुझे गुरुदेव भगवान द्वारा बतलाई घटना याद आ रही है। सन् 1930–32 में गुरुदेव श्री योग

साधन आश्रम ऋषिकेश में रहा करते थे। श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने इन्हें खेचरी क्रिया की छेदन, दोहन और चालन के अभ्यास की आज्ञा दी। गुरूदेव जी अभ्यास में कुछ शिथिलता बरत रहे थे। एक दिन उन्होंने खुली आँखों से खेचर सिद्ध योगियों को आकाश मण्डल में विचरते देखा। वे सोचने लगे कि मैं भी इनकी भाँति गगनचारी हो जाता। अतः अपनी शिथिलता पर क्षोभ मानते हुए इन्होंने स्टील की बनी ब्लेड से ही जीभ के नीचे की तन्तु को जल्दी से काटना शुरू कर दिया। इस तन्तु के कटने से रक्त की धारा बहने लगी। अन्तर्यामी श्री प्रभु जी ने आकाश में प्रकट होकर गुरूदेव के हाथ से ब्लेड छीन लिया और फैंक दिया और कहने लगे–''अरे! तुमने यह क्या कर लिया। लोग क्या कहेंगे कि योगियों के बच्चे गूंगे होते हैं।'' इधर इनके एक गुरू भाई रतनलाल ध्यान में बैठे हुए थे श्री प्रभु जी ने कहा–रतनलाल! देखो तुम्हारा गुरूभाई क्या कर रहा है तुम जाकर उसे संभालो, नहीं तो दुनियाँ के लोग कहेंगे कि योगियों के बच्चे गूंगे होते हैं। तुम अमुक स्थान से इस जड़ी को उखाड़ लाओ।'' श्री रतनलाल ध्यान से उठे और श्री प्रभुजी द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर जाकर जड़ी को उखाड़ लाये और उसके रस को निचोड़कर गुरूदेव के मुख में डाल दिया। इससे घाव बहुत जल्दी भर गया। इस प्रकार से गुरूदेव जी की खेचरी प्रभु जी ने अपने संकल्प से सिद्ध करा दिया। योगी समाज में परम पूज्य देव रहा बाबा का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। उन्हें भी श्री प्रभु जी ने सहज ही खेचरी सिद्ध करा दी थी। उनकी काफी लम्बी आयु थी। जिनको खेचरी सिद्ध हो जाती है उनका प्राण निरूद्ध रहता है और वे लोग बहुत समय तक समाधिस्थ रह सकते हैं। खेचरी सिद्ध योगियों को भूख प्यास भी नहीं लगती है। **'न तस्य क्षुधा न तृशा यो वेत्ति मुद्रां खेचरीम्'** इसके अभ्यासी की आयु क्षीण नहीं होती है। और वे सदा नवयौवन सम्पन्न रहा करते हैं।

योग दर्शन में महर्षि पतंजलि देव जी ने विभूतिपाद में एक सूत्र दिया है **'मूर्ध ज्योतिषि सिद्धि दर्शनम्'** अर्थात् मूर्धा ज्योति में ध्यान लगाने से सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं। एक स्थल पर मन और प्राण के लय हो जाने पर सिद्धियाँ स्वतः ही प्रकट हो जाया करती हैं। प्राण स्पन्दन के निरोध के एक अन्य उपाय का वर्णन करते हुए भगवान वशिष्ठ श्री राम जी से कहते हैं।

द्वादशाङ्गुलपर्यन्ते नासाग्रे विमलाम्बरे।
संविद्दृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दो निरूध्यते।।

अर्थात् नासिका के अग्र भाग में दस अंगुल पर्यन्त विमल अम्बर में, आकाश में दृष्टि को स्थिर करके लगाने से प्राण स्पन्दन रुक जाता है। श्री मद् भगवत् गीता में भी इसी

प्रकार की बात लिखी है।

समकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

अर्थात् काय, ग्रीवा और सिर को एक सीध में रखते हुए अचल व स्थिर होकर बैठते हुए इधर–उधर न देखते हुए नासिका के अग्र भाग में ध्यान को केन्द्रित करें। प्राण स्पन्दन निरोध का एक अन्य उपाय बतलाते हुए महर्षि वशिष्ठ कहते हैं–

अभ्यासादूर्ध्वरन्ध्रेण तालूर्ध्वद्वादशान्तगे।
प्राणे गलित संवित्तो प्राणस्पन्दो निरूध्यते।।

इस प्रकार से पुनः–पुनः अभ्यास करते हुए अनाहत चक्र से (द्वादशारद्ध प्राण को षोड्षार अर्थात् विशुद्ध चक्र तक ले आवे इस प्रकार विशुद्ध चक्र में प्राण को रोकने पर भी प्राण स्पन्दन रुक जाता है। एक प्रकार से यह षटचक्र की ही साधना है। इस प्रकार से गुरूपदिष्ट मार्ग से जितेन्द्रिय होकर हित भुक, ऋतु भुक और मित भुक होकर धौति, वस्ति आदि षटकर्मों को करते हुए देह को विशुद्ध करके सुषुम्ना में प्राण प्रवेश के लिए महामुद्रा आदि दशमुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए। दस मुद्राओं का वर्णन हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार से आया है–

महामुद्रा महाबन्धो महावेध च खेचरी।
नड्डीयन मूलबन्धो बन्धो जालन्धराभिधः।।
करणी विपरीताख्या बजोली शक्ति चालनम्।
मुद्राणां दशकं चेदं गोपनीयं प्रयत्नतः।।

महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, बजोली तथा शक्तिचालनी ये दस मुद्राएँ हैं।

हठयोग एवं कुण्डलिनी जागरण में इन मुद्राओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इन मुद्राओं के अभ्यास करने से 72 हजार नाड़ियों का शोधन होता है तथा सभी रक्तवाहिनी एवं ज्ञानवाहिनी (प्राणवाहिनी) नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं जिससे स्वतः योगी का मन एकाग्र हो जाता है। सतोगुण की वृद्धि होती है और ज्ञान का उदय होने लगता है रोगशोक नष्ट हो जाते हैं और साधक का अध्यात्म से स्वतः प्रवेश हो जाता है। इनमें खेचरी मुद्रा तो बहुत ही दिव्यता को प्रदान करने वाली मुद्रा है। ऐसे योगी कल्पान्त जीवी होते हैं। वर्तमान युग में खेचरी सिद्ध योगियों में परमपूज्य देवरहा बाबा का नाम आता है। इन्होंने शताधिक वर्षों तक जीवित रहकर लोगो को योग के प्रति आस्थावान बनाया है। आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी

महाराज ने ही इन्हें खेचरी सिद्ध कराया था इस बात को वे स्वयं अनेक बार सभी लोगों को बताया करते थे। लेखक ने स्वयं भी देवरहा बाबा को यह बात सुनाते हुए देखा है।

प्राणायाम अष्टांग योग का चौथा अंग है। उपनिषदों में प्राण की ऊँची महिमा गाई गई है। प्रश्नोपनिषद् में प्राण की स्तुति इस प्रकार की गयी है–

प्राणस्येदं वशे सर्व त्रिदियेयत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्री श्च प्रज्ञां च विधेहि न इति।।

अर्थात् ये सब तथा स्वर्ग लोक में जो कुछ स्थित है वह प्रण के ही आधीन है। जिस प्रकार माता पुत्र की रक्षा करती है उसी प्रकार हे प्राण! तू हमारी रक्षा कर तथा हमें श्री और बुद्धिप्रदान कर। प्राण की उत्पत्ति के विषय में बताते हुए एक मंत्र आया है–

आत्मन एश प्राणो जायते यथेशा पुरुषे।
छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिन शरीरे।।

यह प्राण आत्मा से उत्पन्न होता है जिस प्रकार मनुष्य शरीर से यह छाया उत्पन्न होती है उसी प्रकार आत्मा भ प्राण व्याप्त है जो यह मनोकृत संकल्पादि से इस शरीर में आ जाता है।

योग दर्शन में प्राणायाम के दो फल बताये हैं जिनमें प्रथम है प्रकाशावरण क्षय तथा दूसरा धारणा के अभ्यास में मन की योग्यता बढ़ना। प्राणायाम का लक्षण योगदर्शन में इस सूत्र में बताया गया।

तस्मिन् सतिश्वासप्रवासयोर्गतिविच्छेदः

प्राणायामः–योगसूत्र 2/49

प्राणायाम के अभ्यास से विवेक ज्ञान के अवरोधक अधर्म रूपी क्लिष्ट कर्म दुर्बल होकर क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए मनु महाराज ने प्राणायाम को परम तप की संज्ञा दी है। इससे शरीरगत कफादि मलों की शुद्धि तथा ज्ञान की दीप्ति होती है। प्राण निग्रह से शरीर व इन्द्रियों के मल दूर हो जाते हैं। हमारे ऋषियों ने प्राणायाम की परम उपादेयता को समझकर ही उसे सन्ध्या आदि नित्य कर्मों का अभिन्न अंग बना दिया। हमारे चित्त की प्रसार भूमि नाड़ियाँ ही कही गई हैं। उनकी शुद्धि का परम साधन प्राणायाम है। प्राणायाम से दूरदर्शन–दूरश्रवण आदि–आदि योग्यता भी साधक को प्राप्त हो जाती हैं। हठयोग के ग्रन्थों में इसका विस्तार से वर्णन आया है। कुण्डलिनी जागरण में प्राणायाम का विशेष महत्व है। पग्राण–अपान की एकता व उनके मूलाधार पर आघात से कुण्डलिनी जाग्रत होती है।

प्राणायाम का अधिकारी कोई-कोई ही होता है। आजकल साधक अल्पवीर्य एवं दृढ़ लगन वाले नहीं होते हैं। इसलिए प्राणायाम का फल जो बताया गया वह नहीं मिलता। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठा में प्राणायाम का विशेष महत्व होता है। प्राणायाम का अभ्यासी ऊर्ध्वरेता बनता है। मन की एकाग्रता प्राप्त करने के लिए नाड़ी शोधन प्राणायाम एवं भस्त्रिका प्राणायाम का विशेष महत्त्व है। प्राणायाम का अभ्यास सत्वगुण को बढ़ाता है जिसके बढ़ने से साधक में लघुता एवं प्रकाशकत्व बढ़ जाता है। इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यासी का योग एवं सूक्ष्म जगत में सहज ही प्रवेश हो जाता है।

रज्जू बद्धो यथा श्यानो
गतोऽप्याकृष्यते पुनः
गुण बद्ध स्तथा जीवो
प्राणापानेन कृष्यते

(गोरख पद्धति)

अर्थात्

जिस प्रकार रस्सी से बँधा हुआ पक्षी रस्सी के खींचे लेने पर वापस आ जाता है वैसे ही प्राण और अपान से बँधा जीव शरीर में रहता है।

पवन ही जोग पवन ही भोग।
पवन ही हरे छत्तीसों रोग।
या पवन कोई जागे भेव।
सो आपैं करता आपैं देव।।

अर्थात्

योग साधना का प्रमुख अंग पवन का संयम है। प्राणायाम के साधन से योग-भोग दोनों में निपुणता मिलती है। जिसका शरीर प्राणायाम करने से स्वस्थ और निर्विकार रहता है। जो साधक प्राण को अपने शरीर में स्थिर रखता है और इसका रहस्य समझ लेता है वह सिद्ध हो जाता है। वही शिव स्वरूप हो जाता है।

—गोरखवाणी

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा

डा. विजय सिंह

युद्ध के समय मोहग्रस्त अर्जुन और स्वधाम जाने हेतु उद्धव श्री कृष्ण द्वारा दिया गया ज्ञानोपदेश उद्धव को। इन दोनों में पूर्ण समानता के साथ देशकाल भेद से संक्षेप और विस्तार का अन्तर है। दूसरा अन्तर यह है कि अर्जुन स्वजनों से युद्ध न करने के लिये मोहग्रस्त है वहीं उद्धव जो परम ज्ञानी भगवान के अनुगत कृपापात्र कोई वीर योद्धा नहीं उन्हे पूर्वानुमान हो गया है कि जिस लीला पुरुषोत्तम कृष्ण के साथ अब तक भूतल पर आहार विहार करता रहता हूँ यह परम सौभाग्य अब समाप्त होने वाला है। उन्हे यह दिव्य परमानन्द के खो जाने का भय है। अभिनिवेश ही मोह का मूल कारण है। पिछले लेख में उद्धव जी को आसन, प्राणजय के साथ मन को भगवान ने अपने में लगाने का उपदेश दिया और कहा मेरे शिष्य सनकादि परमर्षियों ने योग का यही स्वरूप बताया है कि साधक अपने मन को सब ओर से खींच कर विराट आदि में नहीं, साक्षात गुरु में ही पूर्ण रूप से लगा दे।

एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः।
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा।।4।।

अ. 13 स्कं. 11

उद्धव जी ने पूछा–श्रीकृष्ण। आपने जिस समय जिस रूप से सनकादि ऋषियों को योग का उपदेश दिया था, उसे कृपया हमें बतलायें।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–सनकादि ब्रह्म जी के मानस पुत्र हैं। उन्होंने एक समय ब्रह्मा जी से योग की अन्तिम सीमा के सम्बन्ध में पूछा।

यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव।
योगमादिष्टवानेतद् रूपमिच्छामि वेदितुम्।।5।।
पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः।
पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम्।।6।।

अ. 13 स्कं. 011

सनकादि ने पूछा–पिताजी! चित्त विषयों (गुणों) में तथा गुण चित्त में घुसा रहता है। संसार सागर से मुक्त होने हेतु किस उपाय से चित्त को सर्वथा गुणों के प्रभाव से अलग

किया जा सकता है?

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—उद्धव! ब्रह्मा जी की बुद्धि कर्म रत थी अतः वे ध्यान करके भी इस प्रश्न का उत्तर न दे सके। तब उन्होंने मेरा स्मरण किया। मैं हंस का रूप धर कर उनके सामने प्रकट हुआ। ब्रह्मा जी सनकादि सहित मेरी वन्दना करके पूछा कि "आप कौन हैं?"

हंस रूप से मैंने कहा—मन से वाणी से इन्द्रियों से जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझ से भिन्न कुछ भी नहीं है। फिर 'आप कौन हैं?' यह प्रश्न ही निरर्थक है। आत्मा का चित्त और विषयों के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अतः आत्मसाक्षात्कार द्वारा इन दोनों को त्याग देना चाहिए। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति यह अवस्थायें बुद्धि की वृत्तियाँ हैं। इनका साक्षी होने के कारण जीव उनसे विलक्षण है। इन तीनों अवस्थाओं से अलग मुझ तुरीय तत्व में स्थित होने पर बुद्धि बन्धन का परित्याग हो जाता है। तब विषय और चित्त एक साथ त्यागे जाते हैं।

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः।
मयि तुर्ये स्थितो जह्यात् त्यागस्तद् गुणचेतसाम्।।28।।

अ. 13 स्क. 11

इन्द्रियों द्वारा अनुभव किया जाग्रत अवस्था, मन द्वारा बोध किया स्वप्नावस्था और सुषुप्ति की संस्कारवती बुद्धि का भी स्वामी वही (आत्मा) है। यह जगत मन का विलास है। आत्मा ही अनेक सा अविद्या के कारण प्रतीत हो रहा है।

प्राण और इन्द्रियों के सहित यह शरीर भी प्रारब्ध के अधीन है। कर्म जब तक हैं, तब तक उनकी प्रतीक्षा करता ही रहता है। परन्तु समाधि योग में आरूढ़ पुरुष को स्त्री, पुत्र, धन आदि प्रपंच तथा अपना शरीर भी आत्मा से भिन्न दीखता है जैसे जगा पुरुष स्वप्न में अनुभव किये शरीर आदि को।

हंस रूप भगवान ने कहा—सनकादि ऋषियों मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह सांख्य और योग दोनों का गोपनीय रहस्य है। मैं स्वयं भगवान हूँ। तुम लोगों को तत्त्वज्ञान का उपदेश करने के लिए ही यहाँ आया हूँ।

विप्रवरों! मैं योग, सांख्य, सत्य, ऋत, तेज, श्री कीर्ति और दम सबका परम गति, परम अधिष्ठान हूँ।

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः।

तं सप्रपञ्चमविरुद्धसमाधियोग:
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तु:।।37।।

अ. 13 स्कं. 11

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत् साख्ययोगयो:।
जानीत् माऽऽगतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया।।38।।
अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजस:।
परायणं द्विजश्रेष्ठा: श्रिय: कीर्तेर्दमस्य च।। 39।।

अ. 13 स्कं. 11

मैं समस्त गुणों से रहित हूँ। फिर भी साम्य, असंगतता आदि सभी गुण मेरे ही द्वार हैं, मुझमें ही प्रतिष्ठित हैं। मैं ही उनका कारक हूँ। वे भी नित्य हैं। यह जगत नश्वर है। अलात चक्र (लुकारियों की बनेठी) के समान चंचल और भ्रममात्र है। एक ज्ञानस्वरूप आत्मा ही अनेक सा प्रतीत हो रहा है। गुणों के परिणाम रूप यह शरीर अज्ञान से कल्पित है।

प्रिय उद्धव! मैंने सनकादि मुनियों के संशय मिटा दिये। उन्होंने परम भक्ति से पूजा और स्तुति गान किया। तब मैं अदृश्य होकर अपने धाम लौट आया।

चौदहवें अध्याय में पुन: भक्तियोग की महिमा तथा ध्यान विधि का वर्णन भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को बताया है। उद्धव जी ने पूछा–श्रीकृष्ण! ब्रह्मवादी महात्मा आत्मकल्याण के अनेक साधन बतलाते हैं। मेरे स्वामी! आपने अभी भक्तियोग को ही निरपेक्ष एवं स्वतन्त्र साधन बतलाया है, क्योंकि आसक्ति छोड़कर मन आप में तन्मय हो जाता है।

भवतोदाहृत: स्वामिन् भक्तियोगोऽनपेक्षित:।
निरस्य सर्वत: संङ्ग येन त्वय्याविशेन्मन:।।2।।

अ. 14 स्कं 11

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–उद्धव! सृष्टि के समय ब्रह्मा को जो वेदवाणी का उपदेश किया था। जो आगे चलकर ऋषियों, राजर्षि, आदि से होता हुआ मानव को प्राप्त हुआ। परन्तु सत्व, रज, तम के प्रभाव में बुद्धि, वेदवाणी का भिन्न–भिन्न अर्थ ग्रहण किया है। उन्हीं अर्थों के अनुसार साधन करते हुए फल की प्राप्ति करते हैं परन्तु वे दोष से पूर्ण हैं। जिसने अपने को मुझे सौंप दिया है, उसे न ब्रह्मा, इन्द्र सम्राट बनने की इच्छा होती है। वह योग की बड़ी–बड़ी सिद्धियों और मोक्षतक की अभिलाषा नहीं करता।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधि पत्यम्।

न योगसिद्धीर पुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्।।14।।

अ. 14 स्कं. 11

उद्धव! मुझे तुम जितने प्रिय हो, उतने प्रिय पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर स्वयं लक्ष्मी जी भी नहीं है। जिनका चित्त मेरे ही रंग में रंग गया है, किसी प्रकार की कामना जिनकी बुद्धि का स्पर्श नहीं कर पाती। उन्हें मेरे जिस परमानन्दस्वरूप का अनुभव होता है, उसे और कोई नहीं जान सकता।

उद्धजी! मेरा जो भक्त अभी जितेन्द्रिय नहीं हो सका है और सांसारिक विषय बार-बार बाधा पहुँचाते रहते हैं। वह भी मेरी प्रगल्भ भक्ति के प्रभाव से प्रायः विषयों से पराजित नहीं होता।

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः।
प्रायः प्रगल्भ्या भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते।।18।।

अ. 14 स्कं. 11

उद्धव! योग-साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-तप त्याग मुझे प्राप्त करने में उतने समर्थ नहीं हैं, जितनी दिनों-दिन बढ़ने वाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।20।।

अ. 14 स्कं. 11

मैं अनन्य श्रद्धा और प्रेममयी भक्ति से ही पकड़ में आता हूँ। जैसे आग में तपाने पर सोना मैल छोड़ कर शुद्ध होता है, उसी प्रकार मेरे भक्तियोग से आत्मा कर्म वासनाओं से मुक्त होकर मुझ को ही प्राप्त हो जाता है।

यथाग्निना हेम मलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानुषयं विधूय
मद्भक्तियोगे भजत्यथो माम्।।25।।

सब बातों का सार यह कि जिनका मन निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है, उसका चित्त विषयों में फंस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है, उसका चित्त मुझ में तल्लीन हो जाता है। अतः तुम पवित्र एकान्त स्थान में बैठकर बड़ी सावधानी से मेरा ही चिन्तन करो।

"ॐ रामलाल प्रभवे नमः"

लीला धारी की लीलाऐं

–जगदीश राए बंसल "अधम" 9212434003 एवं 011–35699425

गताँक से आगे–

सिद्ध योगाधिपति गुरुदेव भगवान मंगलमूर्ति परम हितकारी योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी भव्य लेखनी से अवगत कराते रहे हैं कि मेरे सद्गुरुदेव अर्थात् हमारे आपके दावा गुरुदेव काल चक्र–युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले अखण्ड ज्योति प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की महता को योग प्रचार से उनकी दिव्य एवं चमत्कारी लीलाओं को, जिन्हें मैंने स्वयं देखा है, जन हितार्थ लेखनीबद्ध प्रकाशित करने का प्रयास है। इन कृपाओं का पठन करने वाले भक्तों की, आनन्द कन्द श्री प्रभु जी के श्री चरण कमलों में निष्ठा दृढ़ होगी और वे कल्याण को प्राप्त होंगे।

लीलाऐं

ऋषिकेश से लगभग नौ मील ऊपर पुण्य–तोया भागीरथी के पावन किनारे ब्रह्मपुरी नाम का पवित्र वन है। हमारे सद्गुरु देव योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने कुछ समय इस पवित्र वन में निवास किया था। उन्हीं दिनों अवधूत योगी श्री कृपालानन्द जी भी स वन में रहा करते थे। अखण्ड मण्डलाकार तेज युक्त परम सिद्ध श्री प्रभु जी की वास्तविकता को वह पहचानते थे। अतः उनके प्रति श्री कृपाला नन्द जी के हृदय में स्वभाविक ही अत्यन्त सम्मान एवं प्रेम का भाव उदय हो गया। वह प्रायः श्री प्रभुजी से ज्ञान चर्चा किया करते थे। आनन्दकन्द जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण ने गीता में युक्त योगी का लक्षण कहा है कि जिसका आत्मज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण है और जो विकार रहित स्थिति में पहुँच गया है और सब प्रकार से इन्द्रियजयी है–ऐसा युक्त योगी कहलाता है। हमारे पूर्ण आचार्यों ने योग विद्या की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि जिसको जान लेने पर सब कुछ जाना जाता है। इस महती विद्या के सकल ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए दो मार्गों का वर्णन किया गया है–

पहला–

एक मार्ग औपनिषदिक सिद्धान्त का है जो भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इस प्रकार कहा

है—योगी पहले अपनी इन्द्रियों का साक्षात्कार करें, फिर मन का साक्षात्कार करें, उसके बाद बुद्धि का साक्षात्कार करें, तदनन्तर आत्म साक्षात्कार करें किन्तु इस मार्ग में थोड़ी सी कठिनता है।

दूसरा—

दूसरा मार्ग सर्वसाधारण के कल्याणार्थ हमारे आचार्यों ने बतलाया है। इस मार्ग का संकेत योगाचार्य भगवान पातंजली महाराज ने ''वीतराग विषयं वा चित्तम्'' कह कर किया है। अर्थात् बीतराग पुरुषों को हम अपना ध्येय बनाकर उसके मन में अपना मन, उसके चित्त में अपना चित उसकी बुद्धि में अपनी बुद्धि और उसके अहंकार में अपना अहंकार विलीन कर दें तो थोड़े समय में ही समाधि लाभ कर सकते हैं। उस स्थिति में उसकी उपार्जित सिद्धियाँ हमारी अपनी होंगी और कालान्तर में उनके स्वरूप में लय होकर हम कैवल्य–भाव को भी अवश्य प्राप्त हो जाएँगे।

अवधूत श्री कृपालानन्द जी इस दूसरे मार्ग के ही अनुयायी थे। उनके ध्येय थे भगवान सदाशिव, अतः वे शिव लीन ही रहा करते थे। भगवान शिव में लीनता के कारण अवधूत श्री कृपालानन्द जी को भगवान शिव की शक्तियाँ हर समय प्राप्त थीं।

अंग्रेज स्त्री की लगन—

उन्हीं दिनों मंसूरी के वनों में एक अंग्रेज दम्पत्ति आए। वहाँ एक साधना लीन महात्मा जी के दर्शन होने से उस अंग्रेज स्त्री के हृदय में वैसी साधना कर ईश्वर–प्राप्ति की इच्छा जागृत हो गई। उस स्त्री ने उस महात्मा जी के चरण पकड़ लिए। महात्मा जी ने कहा कि क्या चाहती है? उस मैम ने कहा—जो कुछ तुम करते हो, वही मैं चाहती हूँ। तब महात्मा ने ''तथास्तु'' कह कर उसके सिर पर हाथ रख दिया। अब उस मैम को सब भारतवर्ष व कुल विलयतें दीखने लगी। जब मैम उठी तो उसने अंग्रेज को अपना इस्तीफा लिख कर दे दिया। अंग्रेज ने उसे बहुत कुछ समझाया, परन्तु मैम न समझी। मैम वहीं रहने लगी। महात्मा जी योग बल से समझ गए कि इस देवी का संस्कार महात्मा श्री कृपालानन्द जी से है। अतः उन्होंने उस देवी को ब्रह्मपुरी के वन में जाने की आज्ञा देते हुए कहा—योगीराज श्री कृपालानन्द जी के द्वारा ही तुम्हें यह अन्तर्निधि प्राप्त होगी। वह ब्रह्मपुरी के उस पार अवधूत वृति में विचरते हैं। वह देवी दृढ़ लगन वाली थी। अतः अपने पति को वापिस करके महात्मा जी की आज्ञा शिरोधार्य कर ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला लाँघ कर उस वन में जाया, उस अवधूत जी महाराज का अन्वेषण करने लगी। इसी प्रकार रात्री हो गई। अकेली घबराने लगी। देवी बड़े खानदान की लड़की और बड़े खानदान की औरत थी। कहाँ मखमल के गद्दों

में रहने वाली और कहाँ ऐसे भयंकर वन में अकेली बैठी थी। तब उसने भयभीत हो कर कातर स्वर में प्रार्थना की। अकस्मात् श्री कृपालानन्द जी नग्न रूप में विचरण करते हुए उधर आ निकले। उस महात्मा को देखते ही उस देवी चरण कमल पकड़ लिए। तब श्री कृपालानन्द जी कहने लगे–देखो! उस महात्मा ने अपने सिर का बोझा उतार कर हम पर गिरा दिया। मगर हमारा कोई स्थान नहीं है, ऐसे ही विचरते रहते हैं। देवी ने कहा–मैं आपके साथ विचरती रहूँगी। जैसे आपकी आज्ञा हो, वैसे करती रहूँगी। अन्त में उस देवी की दृढ़ लगन देख कर महात्मा ने उसे योगाभ्यास की विधि बताई और वहीं पर कुटी बनाकर रहने की आज्ञा दी। कहा–जब हमारी इच्छा हुआ करेगी तो तुम्हारे पास आ जाया करेंगे। तब देवी ने कहा– महाराज, यहाँ अकेले में कोइ शेर खा जाएगा। तब श्री कृपालानन्द महाराज कहने लगे–जीवों की मैंने जानी। तुमको कोई जीव कुछ नहीं कहेगा। इतना कह कर महाराज जी चले गए। वह देवी अपने गुरू की आज्ञा का अक्षरतः पालन करती रही। फिरश्री कृपालानन्द अवधूत जी ने आ कर उस देवी को कन्द–मूल खिला दिए, पहचान बता दी। और योगाभ्यास से स्वास चढ़ाना सिखा दिया। वह देवी कन्द मूल खा कर अपनी साधना में तत्पर रहती। परिणामतः उसमें कई चतत्कारिक शक्तियों का प्राकट्य हुआ।

महात्मा अवधूत जी एवं हीरा गिरिजी–

जिन दिनों आनन्द कन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज वहाँ पहुँचे थे तब वह देवी भी वहाँ निवास किया करती थीं। इसके अतिरिक्त हीरा गिरी नाम के एक अन्य महात्मा से भी परिचय हुआ। परिचय बढ़ने पर श्री प्रभु जी और वह (हीरागिरी) एक साथ गंगा स्नान करके कन्द मूल खोद लाते और साथ ही बना लिया करते थे। कभी–कभी श्री कृपालानन्द अवधूत जी भी उस ओर आ जाते थे। महात्मा हीरागिरी, अवधूत जी के प्रति कुछ उपेक्षा का भाव रखा करते थे। अवधूत जी उसके मनोभाव समझ गए और उसको शिक्षा देने का विचार किया। अवधूत श्री कृपालानन्द जी प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में ही पवित्र गंगा की धारा में स्नान करके गंगा तट पर ही समाधिस्थ हो कर बैठ जाया करते थे। दोपहर बाद समाधि से उठने के पश्चात् जो कोई भी साधू कन्द–मूल तैयार किया हुआ दिव्य–दृष्टि से दिखाई देता, उसके पास तत्काल पहुँच जाते और आधा भोजन लेकर खा लिया करते थे। ब्रह्मपुरी के वन में रहने वाला कोई भी महात्मा उसके इस नैत्यिक कार्यक्रम के कारण रुष्ट नहीं होता था। क्योंकि सभी को उनकी दिव्य स्थिति का ज्ञान था। सब यही चाहते थे कि यह भगवान सदाशिव के रूप में ही है। अतः सब अपना अहोभाग्य मानते थे और उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा करते थे।

परन्तु महात्मा हीरा गिरि उनके इस व्यवहार से चिढ़ता था। उनके प्रति उपेक्षा भाव से कहता–कृपालानन्द भी हमारे बराबर का भाई ही तो है। योगी राज श्री कृपालानन्द जी ने उनके भावों को जान लिया अतः वे अन्य किसी महात्मा के यहाँ न जाकर महात्मा हीरा गिरी के स्थान पर ही नित्य जाने लगे। दो–तीन दिन तो महात्मा हीरागिरी चुप रहा, परन्तु चौथे दिन उसको आया देखकर बड़ी खीझ हुई। जैसे ही श्री कृपालानन्द जी ने अपना भाग मांगा, वैसे ही वह क्रोध कर बोला–क्यों दे दें तुझे कन्दमूल? क्या तू खोद कर रख गया था? किन्तु अवधूत जी ने उसके इन क्रोध युक्त वचनों को कोई महत्व नही दिया और चुपचाप उसके बनाए हुए कन्दमूलों में से अपना भाग स्वयं ले कर खा गए तथा हंसते हुए चल दिए। महात्मा हीरा गिरी को बहुत चिन्ता हुई और कहता रहा–देखो, महात्मा हो कर भी क्या आदत डाली है? आया और खा गया, जैसे इसके माँ–बाप ने खोद कर–बना कर इसके लिए रखे जाते हों। अगले दिन श्री हीरा गिरी महराज ने इस मुसीबत से बचने के लिए समय से बहुत पहले ही कन्दमूल बना डाले। और प्रभु श्री रामलाल जी महाराज से बोला–उस दुष्ट कृपाला नन्द के आने से पूर्व ही खा लेते हैं। फिर अवधूत खाली पात्र देख कर स्वयं ही लौट जाएगा। उसने खाना परोसा ही था कि सामने से मुस्कराते हुए श्री कृपालानन्द जी आते हुए दिखाई पड़े। आते ही बोले–भाई हीरा गिरी बड़ा अच्छा किया जो तुमने कन्द मूल तैयार कर दिए। आज तो मुझे जल्दी ही भूख लग आई है। विवश महात्मा हीरा गिरी को कन्द मूल के तीन भाग करने पड़े। श्री कृपालानन्द जी तृप्त हो कर चल दिए।

उपाय–

महात्मा हीरा गिरी बड़ी उलझन में था कि कैसे इस अवधूत से पीछा छूटे? उसे एक उपाय सूझा और अगले दिन उसने कन्द–मूल खोदे ही नहीं। परन्तु आचार्य की बात कि उस दिन कृपालानन्द जी आए ही नहीं। जब भोजन का समय दो घण्टे बीत चुका, तब श्री हीरागिरी वन में जाकर कन्द–मूल खोद लाया और बनाने लगा। वह बहुत प्रसन्न था कि नित्य ही इसी उपाय से कृपालानन्द से बचने की बात सोच चुका था। मगर कन्द मूल बन कर तैयार ही हुआ था कि अवधूत जी आ पहुँचे और हंस कर बोले–भाई हीरागिरी! तू हमारा बड़ा ख्याल रखता है....। चलो थोड़ा सा खा लेते हैं। हीरानन्द को बड़ा क्रोध आया, बोला–तुम कुछ समाधि–अमाधि नहीं लगाते केवल भोजन–समाधि लगाते हो....। इसके बाद श्री हीरा गिरी नित्य स्थान परिवर्तन कर करके कन्द–मूल तैयार करने लगा किन्तु श्री कृपालानन्द जी महाराज की दिव्य–दृष्टि से कोई भी स्थान बच न सका।

प्रतिशोध–

महात्मा हीरागिरी के हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो गई। एक दिन उसने चुपचाप धतूरे के सेर भर पत्तों का साग बना डाला। अपने मन में कहने लगा–आज महात्मा को इस प्रकार आने का मजा मिल जाएगा। उधर श्री प्रभु जी ने भी अपने कन्द–मूल भून कर तैयार किए हुए थे। ठीक समय पर श्री कृपालानन्द जी आए। श्री प्रभु जी ने अपने कन्द–मूलों के तीन भाग करके एक भाग श्री कृपालानन्द जी के सम्मुख रखा। श्री हीरागिरी ने धतूरे का सारा साग कृपालानन्द के सम्मुख रख दिया। तब अवधूत जी बोले–क्यों रे हीरागिरी! मरने को हम ही रहे हैं क्या? हम तुम दोनों ही क्यों न मरें? इस साग को तू भी खा। श्री प्रभु जी आश्चर्य में भरकर कहने लगे–महाराज क्या हुआ? ऐसे वचन क्यों बोल रहे हो? तब कृपालानन्द बोले–आज यह हमें मारने के लिए धतूरे के पत्तों का साग बना कर लाया है। श्री प्रभु जी ने कहा–आप इसे मत खाईए, केवल मेरे कन्द–मूल ग्रहण कीजिए। परन्तु अवधूत कहने लगे–बेचारे ने बड़े प्रेम से बनाया है अतः हम इसे अवश्य खाएँगे। ऐसा कह कर उस साग के तीन भाग करके एक भाग श्री प्रभु जी ने सामने रख दिया और कहा तुम निशंक खाओ, हम भी खाते हैं।

परन्तु फल यह दुष्ट हीरागिरी भोगेगा। तीनों ने वह साग खाया किन्तु श्री प्रभु जी और श्री कृपालानन्द पर धतूरे का कोई प्रभाव नहीं हुआ। परन्तु थोड़ा साग खाते ही हीरा गिरी की दशा बिगड़ने लगी। थोड़ी ही देर में विष के प्रभाव से वह मूर्च्छित हो गया। श्री प्रभु जी से श्री कृपालानन्द जी ने कहा–तीन दिन तक यह अपने किए का आनन्द लगा। तीन दिन बाद होश में आते ही हीरागिरी बोला–अब हम इस कृपालानन्द की अपने योग बल से खबर लेंगे....। उसने चुपचाप नित्य की भाँति कन्छ मूल बनाकर तैयार किए। समय पर अवधूत कृपालानन्द जी आए और हँसकर बोले–कहो हीरागिरी! अब कुछ और मन में है? श्री प्रभु जी हँस पड़े तो अवधूत जी कहने लगे– अब यह योगबल से हमसे बदला लेगा। उस समय भी हम इसकी खबर लेंगे।

हीरागिरी अपना अपमान समझ कर बहुत क्रोध में था। सोचने लगा–आज जब यह अवधूत ध्यानस्थ होगा, उसी समय इसका मुख कालिख से काला करूँगा। पूर्ण योगी कृपालानन्द जी तत्काल उसके मन का विचार जान गए और वहीं समाधि लगा कर बैठ गए। हीरागिरी दोनो हाथों को काला करके जैसे ही बढ़ा अवधूत जी के आसन के नीचे से ततैये निकल कर हीरा गिरी के मुख पर चिपट गए। ततैयों से बचने के लिए अनजाने ही अपने दोनों काले हाथों को अपने ही मुख पर लगा लिया। फलतः अवधूत जी के बजाय उसका

स्वयं का मुख काला हो गया। श्री कृपालानन्द जी की इन चमत्कारिक शक्तियों को देखकर हीरागिरी जी भयभीत सा तो हो गया, परन्तु उससे प्रतिशोध की भावना उसके मन से न निकल सकी।

अवधूत का चमत्कार–

एक दिन श्री प्रभु जी के निवास पर श्री कृपालानन्द, हीरागिरी और कृपालानन्द की अंग्रेज शिष्या सब एकत्रित थे। हीरागिरी कहने लगा–अवधूत जी, आपका तन तो अतिकृश है। हमें तो आपसे एक कार्य कराना था। श्री कृपालानन्द जी बोले–निस्संकोच कहो, क्या काम है? हीरागिरी बोला–हम चाहते थे कि इस ब्रह्मचारी (योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज) की शिला यहाँ से उठा कर हमारे स्थान पर (दो मील दूर) पर ले जाकर रख दी जाती। तत्काल अवधूत जी ने अपने अंग्रेज शिष्या को आज्ञा दी–जाओ, यह शिला (वजन सैंकड़ों मन) उठार कर वहाँ रख आओ। आज्ञा पाकर वह देवी श्री कृपालानन्द अवधूत जी की परिक्रमा करके एवं श्री चरणों में प्रणाम करेक उस शिला पर सिद्धासन से बैठ गई। थोड़ी देर में वह शिष्या शिला सहित आकाश मार्ग से जाकर यथा स्थान पर शिला रखकर, आकाश मार्ग से ही आ गई। तथा अपने गुरुदेव को प्रणाम करके बैठ गई। इस चमत्कार को देखकर श्री हीरागिरी बहुत लज्जित होकर अवधूत जी का मान करने लगे। तब श्री प्रभु जी वापिस हरिद्वार आ गए।

योग शिरोमणि, अर्न्तद्रष्टा गुरु देव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज आगे अवगत कराते हैं कि–अवधूत श्री कृपालानन्द जी पूर्ण योगिराज थे और वह भगवान सदाशिव में लीन रहने के कारण सदृश शक्ति सम्पन्न रहते थे। आनन्द कन्द श्री प्रभुजी से वह मित्रता का नाता मानते थे।

जय गुरु देव !

(क्रमशः)

शैव योग

डॉ. श्री नलजिन्नाथ पण्डित, श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू

मूलत: सारी की सारी भारतीय योगविद्या शाम्भवी विद्या है और इसके आदि प्रवर्तक कैलाशवासी भगवान शिव हैं। परन्तु इस विद्या के कई एक प्रक्रिया–क्रम हैं जिनमें से सर्वोच्च स्थान त्रिक प्रक्रिया का माना गया है। चित्त वृत्ति निरोध को त्रिक प्रक्रिया में योग का लक्षण नहीं माना गया है, अपितु जीव और परमेश्वर के ऐक्य रूपी अभेद सम्बन्ध को योग कहा गया है। मालिनी–विजय तन्त्र में कहा गया है–

योगमेकत्वमिच्छन्ति
वस्तुनोऽन्येन वस्तुना।

इस तरह से 'युजिर् योगे' से योग शब्द की व्युत्पत्ति मानी गई है। त्रिक योग की उत्कृष्ट साधना में चित्त वृत्तियों का, अर्थात् उत्कृष्ट साधना में चित्त वृत्तियों का, अर्थात् प्रमाण, विपर्यय, संशय, निद्रा और स्मृति का, विलय हो तो जाता है, परन्तु उस योग के अभ्यास में इन वृत्तियों का निरोध बलात्कारपूर्वक किया नहीं जाता। ये वृत्तियाँ वहाँ स्वयंमेव विलीन हो जाती हैं। केवल ये वृत्तियाँ ही नहीं, अपितु स्वयं चित्त भी विलीन हो जाता है। चित्त के परे रहने वाला उसका साक्षी जीव चैतन्य होता है, वह जीवचैतन्य उस योग में अपने देशकृत, कालकृत तथा आकार कृत सभी सीमाओं के संकोच का परित्याग करता है और अपने वास्तविक असीम शिवचैतन्य के रूप में स्वयंमेव चमकता हुआ स्वयं अपने वास्तविक स्वरूप का और अपने परमेश्वरतात्मक स्वभाव का साक्षात्कार अपने ही चैतन्यात्मक प्रकाश के द्वारा करता है। इसीलिए महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' में शाम्भवयोग का वर्णन करते हुए अन्त में यही कहा है कि–

यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्तम्
आत्मानमात्मन्यवलोकयन्तम्।

इस तरह से जब जीवचैतन्य अपने वास्तविक स्वभावभूत शिवचैतन्य के रूप में चमकने लग जाता है तो इसी को रहस्यवाद की भाषा में जीव का शिव के साथ ऐक्य हो जाना कहा जाता है। यही त्रिक आचार का योग है। इसमें जो चित्त वृत्तियों का विलय हो जाता है, उसे निरोध कहना उचित नहीं। निरोध पद बलात्कार का सूचक है, परन्तु त्रिक आचार के एक

उत्कृष्ट योग–शास्त्र में आचार्य अभिनव गुप्त ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि बलात्कारपूर्वक मन का निरोध करना उतना ही अवाञ्छनीय है जितना एक घोड़े को अपने अभ्यस्त मार्ग से हटाकर अन्य मार्ग से चलाना उसके लिए असह्य होता है। जिस तरह से ऐसा घोड़ा अनेकों उल्टे मार्गों से चलने की चेष्टायें करता है वैसे ही निरोध में रखा जाता हुआ साधक का मन भी अनेकों उल्टे मार्गों में जाया करता है–

स्वं पन्थानं ह्यस्येव

मनसो ये निरुन्धते।

तेषां तत्खण्डनायोगाद्

धावत्युत्पथकोटिभि:।।

(मालिनी विजयवार्तिक)

हाँ, जब 'शाम्भव योग' के अभ्यास से साधक को उत्कृष्टतर आत्म आनन्द की अनुभूति होने लगती है तो मन उस पर इतना रीझ जाता है कि अपनी चंचलता को छोड़–कर स्वयमेव उसी के भीतर विलीन सा हो जाता है। वहाँ मन सुषुप्त नहीं हो जाता है अपितु जागता हुआ ही मनन क्रिया के प्रवाह को छोड़कर निवात दीपक की तरह निश्चल बैठा रहता है। इसी बात को कुमारसम्भव में भी कहा गया है–

अन्तरश्चराणां मरुतां निरोधान्नि

वात निष्कम्पमिव प्रदीपम्।

यहाँ महाकवि ने प्रचलित योगसम्प्रदायों के प्रभाव 'निरोधात्' पद का प्रयोग करते हुए थोड़ी बहुत असावधानता का परिचय दिया है। अस्तु! भगवद्गीता में स्पष्ट कहा गया है–

यथा दीपो निवातस्थो

नेङ्गते सोपमा स्मृता।

योगिनो यतचित्तस्य

युञ्जतो योगमात्मन:।।

शैव–योग की साधना से जब योगी को उत्कृष्टतर आत्म–आनन्द की पर्याप्त अनुभूति के द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप के साक्षात्कार का संस्कार पक्का हो जाता है तो तदनन्तर उसका मन विषयों के भीतर रमण करता हुआ भी कभी भी उनसे लिप्त नहीं होता है। इस बात को भी 'मालिनी विजय वार्तिक' में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है–

निमज्जमानमप्येतन्मनो

वैषयिके रसे।

नान्तरार्द्रत्वमभ्येति

निश्छिद्रं तुम्नकं यथा।।

शैव–योग में इसी प्रकार से इन्द्रिय निरोध की भी सराहना नहीं की गई है। प्रत्युत यह बताया गया है कि उत्कृष्टतर आत्म आनन्द की अनुभूति के सामने जब इन्द्रियों के विषयों की मधुरता फीकी पड़ जाती है तो इन्द्रियाँ अपने विषयों से स्वयंमेव विरत हो जाती हैं। फिर यह वहाँ कहा गया है कि बलात्कारपूर्वक उनका संयमन करने से उनमें प्रायः उल्टी प्रतिक्रियायें हो जाती हैं। उनकी इस उपरोक्त स्वयंमेव हो जाने वाली विरक्ति को वहाँ अनादर विरक्ति कहा गया '–

अनादरविरक्त्यैव गलन्तीन्द्रियवृत्तयः।

यावत्तु विनियम्यन्ते तावत्तावद्विकुर्वते।।

(मा. वि. वा.)

इसी तरह से तन्त्रालोक में यमों, नियमों प्रत्याहारों और हठ प्राणायामों को विशेष उपयोगी नहीं माना गया है। मन्त्र, योग और मुद्रा इन तीनों विषयों के प्रति आ. अभिनव गुप्त ने दो प्रकार की दृष्टियों को लेकर उत्कृष्टतर शैव योग में इनकी स्थिति पर अपने अनुभव निवेदन स्तोत्र में विचार किया है। उनमें से एक दृष्टि है विश्वमय आत्म स्वरूप के विमर्श पर आश्रित और तदनुसार उन्होंने अपनी वाणी से निकलने वाले प्रत्येक शब्द को मन्त्र ही माना है, स्वाभाविक गति से चलते रहने वाले श्वास–प्रश्वास के संचार को ही प्राणायाम कहा है और शरीर के प्रत्येक प्रकार के संस्थान को, अर्थात् खड़े रहने, लेटे रहने, बैठे रहने आदि को मुद्रा में ही गिना है–

शब्दः कश्चन यो मुखा–

दुदयते मन्त्रः स लोकोत्तरः।

संस्थानं सुखदु खजन्म वपुषो

यत् क्वापि मुद्रैव सा।।

प्राणस्य स्वरसेन यत्

प्रवहणं योगाः स एवाद्भुतः।

शाक्तं धाम परं ममानुभवतः

किं नाम न भ्राजते:।।

अपने विश्वोत्तीर्ण स्वरूप का विमर्शन करते हुए उन्होंने योग के इन विषयों का वर्णन इस तरह से किया है कि शिवयोगी के मन्त्र में कोई भी वर्णरचना शेष नहीं रहती है। उसके

प्राणायामात्मक योग में प्राण का प्रवहन ही छूट जाता और उसकी काय योगात्मक मुद्रा में सभी शारीरिक क्रियाओं के अभ्यास छूट ही जाते हैं–

मन्त्रः स प्रतिभाति वर्ण–
रचना यस्मिन्न संलक्ष्यते।
मुद्रा सा समुदेति यत्र गलिता
कृत्स्ना क्रिया कायिकी।।
योगः स प्रथते यतः
प्रवहणं प्राणस्य संक्षीयते।
त्वद्धामाधिगमोत्सवेषु सुधियाँ
किं किं न नामाद्भुतम्।

प्राणायाम, प्रत्याहार, यम, नियम आदि कष्टकारक उपायों के अभ्यास के बिना ही सुखपूर्वक किए जा सकने वाले त्रिक प्रक्रिया के इस अद्भुत योग को ही दृष्टि में रखते हुए आ. उत्पल देव ने अपनी ईश्वर प्रत्यभिज्ञा के अन्त में इस शैव योग को एक सुघट अर्थात् सुकर और अभिनव मार्ग कहा है–

इति प्रकटितो मया
सुघट एष मार्गो नवो।
महागुरुभिरुच्यतेस्म
शिवदृष्टिशास्त्रे यथा।।

शैव योग में बिना किसी बलात्कार के स्वयमेव हो जाने वाली विषय निवृत्ति के विषय में शैवाचार्य नागार्जुन ने अपनी चित्त–सन्तोषत्रिंशिका में इस प्रकार से कहा है–

यैरिन्द्रियैरसि वशीकृतशक्ति चेतः।
पूर्वं कदर्थितमभूरहितैरिवोच्चैः।।
स्वच्छानिकेत–परचिद्रससं विभक्तै–
र्दिष्टयाद्य तैरनुचरैरिव राजसे त्वम्।।

भगवद्गीता में भी इसी बात को अन्य ढंग से कहा गया है–

विषया विनिवर्तन्ते
निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं, रसोऽप्यस्य
परं दृष्ट्वा निवर्तते।।

इससे चित्तवृत्तिनिरोध रूपी श्रमंगों के समुचित योग को औरों के लिए अनुपयुक्त समझते हुए त्रिक आगमों में और कश्मीर इति दर्शन के योग शास्त्रों में एक ऐसे योग–सम्प्रदाय का निरूपण किया गया है जो श्रवण और गृहस्थ सभी के लिए उपयुक्त है तथा जिसका अभ्यास सुगमतापूर्वक किया जा सकता है और जिससे भुक्ति और मुक्ति दोनों ही जीवन के फलों की प्राप्ति हो सकती है। उसी योग का उपदेश अर्जुन को भगवान कृष्ण ने दिया था। उसी का अभिनव निरूपण काश्मीर शैव दर्शन के आचार्यों ने किया।

शिवयोग के इन गुरुओं का यह अभिप्राय है कि जब तक साधक के चित्त में सांसारिक विषय भोग व या स्वर्ग सुख की अथवा योग सिद्धियों के ऐश्वर्य के उपभोग की वासना विद्यमान रहे तब तक उसके चित्त को इनसे हटाकर वैराग्यप्रधान यम, नियम आदि के मार्ग में चलाना लाभप्रद होने की उपेक्षा हानिप्रद हो सकता है। अतः उन्होंने यह सीख दी कि ऐसा साधक गृहस्थ आश्रम में रहता हुआ ही और गार्हस्थसुखों का उपभोग करता हुआ ही साथ–साथ शैव योग की किसी एक धारणा का अभ्यास करता रहे। धीरे–धीरे जब उसे योग के अभ्यास में कुछ सफलता प्राप्त हो जाएगी, तो उसके चमत्कार के सामने उसके सभी विषय सुख फीके पड़ जायेंगे और इन्द्रियाँ स्वयंमेव उनके प्रति उदासीन हो जायेंगी। तब कहीं वह अपनी आध्यात्मिक समुन्नति में निर्विघ्नतापूर्वक अग्रसर हो सकेगा और अन्ततोगत्वा उसका परमेश्वर से अभेदात्मक योग हो जायेगा।

शैव योग की इन प्रक्रियाओं में एक ऐसी दशा का समुदय हो जाता है, जिसमें साधक का जीव–चैतन्य शिवचैतन्य के बीच निमग्न हो जाता है और साधक इस बात का साक्षात् अनुभव करता है कि वह परमेश्वर ही है। इस तरह से उसके जीव–चैतन्य के भीतर शिव–चैतन्य का समावेश हो जाता है। उस समावेश से उसे अपने स्वभावभूत शिवभाव पर पक्का विश्वास हो जाता है। शिव के साथ उसका ऐक्य एक दार्शनिक विचार मात्र न रहकर एक साक्षात् अनुभूत सत्य बन जाता है। उससे साधक मानव जीवन में रहता हुआ ही मुक्त हो जाता है। उस समावेश का पर्याप्त अभ्यास किया जाए तो इसी जीवन में पारमेश्वरी शक्तियों का भी आंशिक उदय हो जाता है। जिससे साधक किसी–किसी वस्तु के सृष्टि–संहार आदि को भी कर सकता है। उससे एक तो उसे अपने परमेश्वरभाव पर और अधिक पक्का विश्वास हो जाता है और दूसरे वह अपने शिष्यों में भी अपने प्रति पक्की श्रद्धा को और पक्के विश्वास को उत्पन्न कर सकता है। उससे वे भी दृढ़ विश्वास से योग मार्ग में प्रवृत्त हो जाते हैं। इसीलिए तन्त्रालोक में कहा गया है–

सिद्धिजालं हि कथितं
पर प्रत्यय कारणम्।
इहैव सिद्धाः कायान्ते
मुच्येरन्निति भावनात्।।

इस तरह से शैव योग में सिद्धियों को विघ्न न मानकर इनके सदुपयोग के ढंग पर प्रकाश डाला गया है।

शैव योग की एक और विशेषता यह है कि इसमें भक्ति को भी एक प्रधान स्थान दिया गया है। परमेश्वर की निग्रह प्रधान बन्धक शक्तियाँ योगियों को पथ–भ्रष्ट कर देती हैं और अनुग्रह प्रधान मोचक शक्तियों के कार्यों में बाधा डालती हैं। परन्तु परमेश्वर के भक्त से डरती हुई वह बन्धक शक्तियाँ उसके पास आती ही नहीं और मोचक शक्तियाँ उसे योगमार्ग में निर्बाध गति से आगे बढ़ाती हैं। परिपूर्ण स्वरूप साक्षात्कार का संस्कार साधक पर तभी पक्का हो जाता है जब उसकी मस्तिष्क शक्ति और हृदय–शक्ति दोनों का समुचित विकास हो जाए। शास्त्रों पर गम्भीर चिन्तन करने से और योग के अभ्यास से साधक की मस्तिष्क शक्ति का विकास हो जाता है। परन्तु उसके हृदय की शक्तियों के विकास के लिए भक्ति ही एकमात्र सफल साधन है। वास्तविक आत्मस्वरूप और वास्तविक आत्म स्वभाव को ठीक तरह से समझने के लिए तीव्र और विकसित मस्तिष्क शक्ति की आवश्यकता होती है और उस समझ पर पक्के विश्वास को स्थिर करने के लिए हृदय की शक्तियों के विकास की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। इसी कारण भक्ति प्रधान शैवयोग सभी योग–फलों को सुखपूर्वक दे सकता है ऐसा शिव–योगियों का विश्वास है। भक्ति का पुट इस योगशास्त्र को सरस भी बनाता है और उससे साधक की रुचि इसमें बढ़ती ही जाती है।

शैव योग के त्रिक सम्प्रदाय में शिष्यों की भिन्न–भिन्न प्रकार की योग्यता और रुचि को दृष्टि में रखते हुए अनेक प्रक्रियाओं का निरूपण किया गया है, जिससे गुरु प्रत्येक शिष्य को उसके लिए उपयुक्त योग मार्ग पर ही उसे चला सके। इसीलिए आगम शास्त्र में कहा गया है–

चित्तभेदान्मनुष्याणां
शास्त्र भेदो वरानने।
व्याधि भेदाद्यथा भेदो
भेषजानां महौजसाम्।।

यथैकं भेषजं ज्ञात्वा
न सर्वत्र भिषज्यति।
तथैकं हेतुमालम्ब्य न
सर्वत्र गुरुर्भवेत्।।

इस योग की दीक्षा के लिए अधिकार की नियामक एकमात्र भक्ति है। जो जिज्ञासु शिव का सच्चा भक्त हो उसे इसकी दीक्षा दी जा सकती है चाहे वह किसी भी जाति से, धर्म से, लिंग से या आयु से सम्बन्ध क्यों न हो। त्रिक शाखा के इस शैव योग की एक और विशेषता यह है कि इसमें दीक्षा के क्रियाकलापों से लेकर ही अद्वैत दृष्टि को शिष्य की बुद्धि पर अंकित किया जाता है। उससे वह किसी भी द्वैत प्रधान या द्वैताद्वैत–प्रधान भूमिका पर पहुँचने मात्र से सन्तुष्ट नहीं होता है और परिपूर्ण पराद्वैत की स्थिति को प्राप्त कर चुकने पर ही अपने को कृत–कृत्य समझता है। एक और विशेषता इसकी यह है कि इसका सुन्दर, स्पष्ट और सुबोध विश्लेषण तन्त्रालोक और तन्त्रसार में आ. अभिनव गुप्त ने कर रखा है। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी यह भी एक निर्विचार सत्य बात है कि यह अद्वैत भक्ति–प्रधान योग मार्ग अभी तक विशेष लोकप्रिय नहीं बन पाया। अभी तक कोई इक्का दुक्का विद्वान ही इससे परिचित हैं और कोई विरला ही साधक इसकी साधना में संलग्न होता है। इस बात के कारण पर प्रकाश डालते हुए आ अभिनव गुप्त ने तन्त्रालोक में कहा है कि जिस तरह से केवड़े के पुष्प के मधु का आस्वाद साधारण मधुमक्खियाँ नहीं ले सकतीं उसी तरह से यह अद्वैत मार्ग साधारण साधक को अच्छा नहीं लगता है और जिस तरह से उस पुष्प के सौरभ का पान एक मात्र काला भौंरा ही करता है, उसी तरह से इस योग मार्ग पर उसी साधक की रुचि बनती है जिस पर परमेश्वर ने अपना अनुग्रह शक्तिपात कर रखा हो–

केतकी कुसुमसौरभे भृशं
भृङ्ग इव रसिको न मक्षिका।
भैरवीय–परमाद्वयार्चने
कोऽपि रज्यति महेशचोदितः।।

त्रिगुणात्मक मन को कैसे जानें?

श्री इन्द्रप्रताप सिंह

(प्रवक्ता मौलिक सिद्धान्त विभाग चिकित्सा विज्ञान संस्थान–काशी विश्वविद्यालय)

महर्षि चरक के अनुसार वात, पित, कफ शारीरिक दोष तथा रज और तप (मन) के दोष कहलाते हैं। सत्वगुण मन का प्राकृत स्वरूप है। इन्हीं वात, पित, कफ और रज–तम, क्रमशः शारीरिक और मानसिक दोषों के कारण हमारे शरीर और मन दूषित होते हैं। दोनों के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने के कारण मन शरीर को तथा शरीर मन को प्रभावित करते हैं। रज और तम दोष का मन से सम्बन्ध रहना उपधा कहलाता है। महर्षि चरक ने इस उपमा को ही दुःख और शरीरधारण अर्थात् पुनर्जन्म का कारण माना है और इस प्रकार इस उपधा के कारण ही जीव जीवन–मरण के चक्र में फंसा रहता है। यदि रज तम का मन से सम्बन्ध छूट जाता है तो सभी दुःख दूर होकर आत्यन्तिक सुख मोक्ष की प्राप्ति होती है जैसा कि कहा गया है 'मोक्षो रजस्तमो भावा द्बलवत्कर्म संक्षयात्' रजतम ही हमारी समस्त शुभाशुभ इच्छाओं के मूल कारण हैं। जब शुभ अशुभ–भावों को भोगने की इच्छा नहीं रहती तब आत्मा चंचल मन को समाधिस्थ कर लेता है। ऐसी दशा में आत्मा सभी शुभ या अशुभ भावों को त्याग देता है क्योंकि मन के संयोग से ही कार्य होता है। समाधिस्थ होने पर मन की वृत्तियाँ रुक जाती हैं फलतः रज और तम से मन मुक्त हो जाता है।

त्रिगुणात्मक मन को जानने से ही व्यक्ति में राजसादि मन के वेगों के उत्पन्न होने की संभावना को जाना जा सकता है तथा सतर्कता बर्तते हुए धारणीय वेगों को धारण करके मन को पाप रहित करके धर्म अर्थ और काम की प्राप्ति की जा सकती है। तथा मन को शील, शौच, भक्ति आदि की वित्तति से बचाया जा सकता है। महर्षि चरक के अनुसार रज तम रहित मन द्वारा योग ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है।

रोगी परीक्षा के संदर्भ में भी आयुर्वेद में सत्व (मन) की परीक्षा को बहुत महत्व प्रदान किया गया है। इस संदर्भ में मन को तीन प्रकार का माना गया है (1) प्रवर (उत्तम) (2) मध्यम और (3) अवर (हीन) इसमें प्रवर सत्व सम्पन्न व्यक्ति को सत्वसार व्यक्ति भी कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति स्मरण शक्ति युक्त, भक्ति सम्पन्न, कृतज्ञ, बुद्धिमान, पवित्र अधिक उत्साह वाले चतुर और धीर होते हैं।

लड़ाई में पराक्रमपूर्वक युद्ध करते हैं उनके शरीर में विषाद बिल्कुल नहीं होता। इनकी

गतियाँ स्थिर होती हैं। बुद्धि और चेष्टाएँ गम्भीर होती हैं। ये निरन्तर कल्याण करने वाले विषयों में अपने मन और बुद्धि को लगाए रहते हैं। प्रवर सत्व या सत्वसार सम्पन्न व्यक्ति छोटे शरीर वाले होने पर भी सत्व गुण की अधिकता होने से निज और आगन्तुक कारणों से उत्पन्न होने वाली बीमारियों या विपत्तियों से नहीं घबराते।

मध्य सत्व वाले व्यक्ति दूसरों का सहारा लेकर अपने से अपने को अवलम्बित करके कार्य करते हैं या दूसरे से आश्वासन पाकर अपना कार्य करते हैं। अर्थात् अमुकपरिस्थिति में अमुक प्रकार से अमुक व्यक्ति को लाभ हुआ था हमें भी हो जायेगा, इस बात को ध्यान में रखकर विपत्ति को सहन करते हैं।

हीन सत्व वाले व्यक्ति न स्वयं दूसरों को उदाहरण स्वरूप में देखकर न दूसरों के समझाने पर भी अपने मन के वेग को रोक सकते हैं। अर्थात् विपत्ति आने पर घबड़ाते हैं रोते हैं चिल्लाते हैं। ऐसे हीन सत्व वाले व्यक्ति बड़े शरीर युक्त होने पर भी छोटी विपत्तियों को भी सहने में असमर्थ होते हैं। उनके पास सदा भय, शोक, लोभ, मोह और मान (अहंकार) इकट्ठा रहता है। रौद्र, भैरव, अप्रिय, घृणित, विकृत कथाओं को सुनकर या माँस रक्तादि को देखकर विषाद, वैवर्ण्य, मूर्छा, पागलपन, चक्कर का आना या गिर पड़ना आदि कारणों में से किसी एक को अवश्य प्राप्त करते हैं।

चरक शा. अध्याय पाँच के 52 व गद्य में मनः शुद्धि अर्थात् रजतम से निवृत्ति के बहुत से उपाय बतलाए गए हैं उनको पालन करके मन को शुद्ध किया जा सकता है। ये सभी उपाय मूलतः व्यक्ति को प्रवृत्ति मार्ग से हटाकर निवृत्ति मार्ग की ओर ले जाने वाले होते हैं। इन उपदेशों से शुद्ध मन में ही सत्व बुद्धि का उदय होता है जो अज्ञान नाशक होती है। और तभी यथार्त् प्रज्ञपराध दोष से बचा जा सकता है जो समस्त मानस और आगन्तुक रोगों का मूल कारण है। महर्षि चरक के अनुसार आगन्तुक रोगों से बचने के साधनों में प्रवर सत्वसम्पन्न व्यक्ति के साहचर्य को तथा हीन सत्व वालों के परित्याग को भी एक साधन माना है, ऐसे व्यक्ति की पहचान त्रिगुणात्मक मन के स्वरुप को जाने बिना संभव नहीं है। चूँकि मन सूक्ष्म और अतीन्द्रिय है अतः इसकी परीक्षा अनुमान द्वारा ही संभव है। और यह अनुमान व्यक्ति के व्यवहार विचार आदि के अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए महर्षि चरक ने शारीरिक स्थान के चतुर्थ अध्याय पर त्रिगुणात्मक मन के अनेक भेदों का उल्लेख किया है, जिसका संक्षिप्त विवरण पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

मुख्य रूप से मन तीन प्रकार का होता है—(1) शुद्ध (सात्विक) (2) राजस (3) तामस

इनमें शुद्ध (सात्विक) मन कल्याणकारी अंश के अधिक होने से दोष रहित होता है राजस मन क्रोध अंश की प्रधानता होने से दोषयुक्त कहा जाता है। इसी प्रकार तामसमन में मोह अंश की प्रधानता होती है जिससे वह दोषयुक्त कहलाता है। इन तीन प्रकार के मन में एक मन के भेद तरतम भेद से अपरिसख्येय होते हैं। अतः मन के कुछ भेदों का निर्देश उदाहरणार्थ निम्नलिखित प्रस्तुत किया जा रहा है। सात्विक मन के निम्न उपभेदों का वर्णन चरकादि ग्रन्थों में इस प्रकार पाया जाता है–

(अ) ब्रह्मसत्व व्यक्ति की पहचान:–ऐसे व्यक्ति पवित्र, सत्य प्रतिज्ञा वाले, जितात्मा, कार्याकार्य विवेकयुक्त, ज्ञान विज्ञान और वचन शक्ति सम्पन्न, अमर्षरहित एवं प्राणिमात्र के प्रति समदृष्टि का व्यवहार करने वाले होते हैं। सुश्रुत संहिता में ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मकाय व्यक्ति कहा गया है।

(ब) आर्षसत्व व्यक्ति की पहचान:–यज्ञ करना, अध्ययन करना, व्रत होम, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, अतिथियों की सेवा करने वाला, मद अहंकार राग द्वेष मोह लोभ और क्रोध से रहित प्रतिभा–सम्पन्न, वक्ता विज्ञान, धारणा शक्ति सम्पन्न व्यक्ति को आर्ष ऋषि सत्व वाला जानना चाहिए।

(स) ऐन्द्रसत्व व्यक्ति के लक्षण:–लक्ष्मी सम्पन्न, वाक्य ग्रहण करने योग्य वचन बोलने वाले, शूर ओजस्वी, तेजस्वी बुरे कार्यों से दूर रहने वाले दीर्घदर्शी धर्म अर्थ काम में सदा तत्पर रहने वाले व्यक्ति को इन्द्र सत्व वाला जानना चाहिए। सुश्रुत ने ऐसे ही व्यक्तियों का महेन्द्र काय वाला बतलाया है।

(द) याम्यसत्व सत्व व्यक्ति के लक्षण:–कर्तव्याकर्तव्य मर्यादा के अनुसार व्यवहार करने वाला, कार्य उपस्थित होने पर शीघ्र कार्य करने वाला, सभी कार्यों में उचित मार्गों का अवलम्बन करने वाला, असंप्रहार्य (अर्थात् कोई व्यक्ति उसके उपर प्रहार न कर सके) सदा जागरूक, स्मरण शक्ति सम्पन्न ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला, राग द्वेष मोह से शून्य व्यक्ति को याम्य सत्व (यमराज सत्व) जानना चाहिए।

(य) वारुण सत्व व्यक्ति के लक्षण:–शूर, धीर, पवित्र अपवित्र से द्वेष करने वाला यज्ञ करने वाला, जल में तैरना, नौका विहार से प्रेम करने वाला, बुरे कार्यों को न करने वाला, स्थान पर क्रोधित और प्रसन्न होने वाला तथा सुश्रत के अनुसार शीघ्र क्रोधित और प्रसन्न होने वाला, पिंगलवर्ण का व्यक्ति वारुण सत्व वाला कहा जाता है।

(र) कौबेर सत्व व्यक्ति का लक्षण:–स्थान पर मान, अहंकार और स्थान पर वस्तुओं का उपयोग करने वाला अर्थात् जहाँ जब अभिमान करना आवश्यक हो तब

अहंकार करने वाला और जब जिस वस्तु का उपयोग करने वाला परिवार पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न सुखपूर्वक विहार करने वाला धर्म अर्थ काम में सदा तत्पर, पवित्र, क्रोध और प्रसन्नता साफ–साफ जिसकी प्रकट हो ऐसे व्यक्ति को कांबेर सत्व वाला जाना जाता है ऐसे व्यक्ति को सुश्रत में कावेर काय कहा गया है।

(ल) गार्न्धवसत्व व्यक्ति के लक्षण:–जिसे नाचना गाना, बाजा बजाना आलाप लेना प्रिय हो जो श्लोक पाठ आख्यायिका (कहानी) इतिहास और पुराण–पाठ में कुशल हो जो गन्ध आदि का लगाना, पुष्प माला, चन्दन कस्तूरी आदि का अनुलेपन, सुन्दर वस्त्र धारण स्त्री–विह की इच्छा नित्य करता हो और दूसरे के गुणों में दोषारोपण करने वाला न हो ऐसे व्यक्ति को न्धर्वसत्व वाला जानना चाहिए। सुश्रुत में ऐसे व्यक्ति को गान्धर्व काय वाला कहा गया है।

इसी प्रकार राजस सत्व के भी 6 उपभेद बतलाए गए हैं–

(क) आसुर सत्व व्यक्ति के लक्षण–शूर अधिक क्रोधी दूसरे के गुणों में दोष देखने वाला, सम्पत्तिशाली, कपटी उग्रस्वभाव वाला दया शून्य अपनी पूजा करने वाला अर्थात् स्वार्थी ऐसे व्यक्ति को आसुर सत्व वाला जानना चाहिए।

(ख) राक्षस सत्व व्यक्ति का लक्षण–किसी प्रतिकूल वस्तु को किसी भी दशा में सहन न करने वाला, बहुत दिनों तक क्रोध करने वाला अर्थात् क्रोध की परम्परा को बनाए रखने वाला, छिद्र पाकर धोखा से मारने वाला, भोजन से अधिक प्रेम करने वाला, मांस भोजन में सबसे अधिक प्रेम रखने वाला शयन और परिश्रम अधिक करने वाला, ईर्ष्या करने वाला ऐसे व्यक्ति को राक्षस सत्व वाला जानना चाहिए। सुश्रुत में इसे ही राक्षस काय कहा गया है।

(ग) पंचाश सत्व व्यक्ति के लक्षण–अधिक आलसी, स्त्री के वश में रहने वाला स्त्रियों के साथ एकान्त में रहने की इच्छा करने वाला, अपवित्र पवित्रता से दूर रहने वाला, डरपोक दूसरों को भयभीत करने वाला तथा विकृत आहार–विहार करने वाला व्यक्ति पंचास सत्व युक्त कहा जाता है।

(घ) सर्यसत्व व्यक्ति के लक्षण–क्रोध करने पर शूर, क्रोध उत्पन्न होने पर डरपोक तेज, अधिक परिश्रम करने वाला भययुक्त होकर प्रत्येक कार्य को करने वाला सदा आहार और विहार में लगे रहने वाला व्यक्ति सर्य सत्व वाला जाना जाता है।

(ङ) प्रेत सत्व व्यक्ति के लक्षण–भोजन की सदा इच्छा रखने वाला, अत्यन्त दुखमयी स्वभाव आचार और उपचार वाला जो दूसरे के गुणों में दोष को आरोपित करता

हो, जो कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य ज्ञान से शून्य हो अत्यन्त लोभी हो और अकर्मशील हो (आलसी हो) ऐसे व्यक्ति को प्रेतसत्व वाला जानना चाहिए।

(च) शाकुन सत्व व्यक्ति के लक्षण—सदा मैथुन में आसक्त रहने वाला, सदा आहार और विहार में तत्पर रहने वाला, चंचल असहिष्णु और धन आदि किसी भी वस्तु का संचय न करने वाला नित्य शक्ति रहने वाला व्यक्ति शाकुन सत्व वाला जाना जाता है।

इसी प्रकार पाशव (तामस) सत्व के भी निम्न उपभेद बतलाए गए हैं—

(छ) पशु सत्व व्यक्ति के लक्षण—अपने ऊपर आई हुई विपत्तियों को दूर करने वाले, स्मरण शक्ति से शून्य, निन्दित आचार और आहार करने वाले, सदा मैथुन में प्रसक्त रहने वाले अधिक शयन करने वाले व्यक्ति को पाशवसत्व वाला जानना चाहिए।

(ज) मात्स्य सत्व व्यक्ति के लक्षण—डरपोक, मूर्ख, आहार के लोभी चंचल, काम और क्रोध में अनुरक्त सदा चलने–फिरने वाले (यात्राप्रिय) तथा जल से अधिक प्रेम करने वाले और हृष्ट स्वभाव के व्यक्तियों को मातस्य सत्व वाला जानना चाहिए।

शोक संवेदना

डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप नहीं रहे।

बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि बनारस निवासी श्री वीरेन्द्र स्वरूप जी बसन्त पंचमी के दिन नश्वर शरीर को त्याग कर प्रभु चरणों में लीन हो गये। वे 1972 में एक योग पिपासु बनकर बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय के कार्यक्रम में श्री गुरुदेव योगेश्वर चन्द्र मोहन जी महाराज से योग–दीक्षित हुये। घरबार छोड़कर विरक्त भाव से गुरुदेव की सेवा में आ गये। गुरुदेव ने उन्हें टाट पहना दिया। वे टाट ही कई वर्षों तक पहनते रहे। दो तीन वर्ष ऋषिकेश योग साधन आश्रम में रहकर संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया। कुछ वर्षों के बाद 1983 में गहस्थाश्रम में प्रवेश किया। गुरुदेव ने उनकी इच्छा को देखते हुए स्वयं विवाह कार्य सम्पन्न कराया। तत्पश्चात् वे योग शिक्षक बनकर केन्द्रीय विद्यालय में योग शिक्षक रहे। उनके दो पुत्र हुये जिन्हे अच्छी शिक्षा मिली और वे अच्छी नौकरी पाकर दिल्ली में रह रहे हैं। वीरेन्द्र स्वरूप जी के गुणचरणों में आने के साथ–साथ कई युवा साधक गुरुदेव के चरणों में आते रहे और अपनी साधना के साथ स्वयं गुरुदेव के योग प्रचार कार्यक्रम में सहभागी हुये। वीरेन्द्र स्वरूप जी ने आध्यात्मिक ग्रन्थों का खूब मनन किया और अच्छे विद्वान बन गये। 26 जनवरी 2023 को बसन्त पंचमी को उनका देहावसान हो गया। यह एक अपूर्णीय क्षति है। श्री सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

आचार्य दासलाल

(सम्पादक सिद्धयोग)

(क) **वानस्पत्य सत्व**–व्यक्ति आलसी केवल आहार में ही लगे रहने वाले तथा सभी प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तर ज्ञान से शून्य पुरुष को वानस्पत्य सत्व वाला जानना चाहिए, काश्यप के अनुसार वह बध–बन्धन को सहन करने वाला होता है।

इस प्रकार पृथक्–पृथक् सत्वों का वर्णन किया गया है। इसमें कल्याणकारी अंश भी अधिकता से युक्त होने के कारण सात्विक मन को शुद्ध मन माना जाता है। शुद्ध मन का लक्षण–आरोग्य प्रशमो रूप ज्ञान विज्ञान–मार्षता। दीर्घमायुः सुखात्यक्त (सुखवप्ति) सामान्य शुद्ध लक्षण मूर्त (काश्यप)। अर्थात् आरोग्य शान्ति रूप (सुन्दरता) ज्ञान, विज्ञान आर्पता (उत्तमगुणाढ्‌ नता) दीर्घायु और सुख साधन को न छोड़ना या सुख साधन की प्राप्ति करना है। इस प्रकार चरक ने शुद्ध सत्व के उपरोक्त सात भेद बतलाए हैं जिसमें ब्रह्म सत्व को **शुद्धतम्** माना है। सुश्रुत ने भी सात ही सात्विक कार्यों का उल्लेख किया है पर काश्यप संहिता में शुद्ध सत्व के आठ भेद बतलाए गये हैं। इसमें आठवां प्रजापात्य सत्व एक अलग माना है जिसका लक्षण संतानयुक्त होना, यज्ञादि क्रियाओं को करने वाला होना, धार्मिक जगत से प्रेम करने वाला या जो जगत का प्रिय है, ईर्ष्या रहित होना, दुष्टता रहित होना पवित्रता प्रेमी होना बतलाया गया है।

इसी प्रकार तरतम भेद से रोषाशं की प्रधानता युक्त राजस सत्व के 6 भेद चरक एवं सुश्रुत में (वदेतेराजमकाया) स्वीकार किया है पर काश्यप ने राजन सत्व के सात भेद माने हैं। इसमें सातवां उन्होंने सूक्ष्म सत्व माना है अर्थात् उनके अनुसार जो व्यक्ति सदा दान, शमन शृंगार अतिमान, भोजन और मैथुन में लगा रहता है, जो सर्वदा खुश रहता है तथा अधिक भोजन करता है उसे वाक्षसत्व वाला जानना चाहिए।

क्यों मन जीवन सार विसारा ?

–संत खालस

विषय परायणा होय जगत महँ।
फिरै अन्ध मतवारा।।
धनदाता सुत काम न आवै।
जिन पै कियो सहारा।।
जिस जग में तू भूल रहा है,
दो दिन का है गुबारा।।

कौड़ी को तो खूब सम्हाला।
लाल रतन क्यों छोड़ दिया।।
जिहि सुअरन सों अति सुख पावै।
सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया।।
'खालस' इक भगवान भरोसे,
तन मन धन क्यों न छोड़ दिया ?

श्री आनन्दकन्द प्रभु जी
का
प्रकाट्य दिवस

आनन्दकन्द श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का 135वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्ध गुफा सवांई आश्रम में 28, 29 व 30 मार्च 2023 को बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है।

सभी गुरु–भक्तों से निवेदन है कि इस पुण्य पर्व पर श्री गुरु धाम में आकर गुरु दर्शन एवं सेवा का पावन पुण्य प्राप्त कर अपने को धन्य करें। जय श्री प्रभु जी की। रामनवमी का भण्डारा 30 मार्च को रहेगा।

भक्तगण/साधकगण
श्री सिद्धगुफा सवांई
एत्मादपुर, आगरा।

इसी प्रकार मोह अंश का प्रधानता वाले तामससत्व के लक्षणों का भी उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में सामान्य तामस सत्व का लक्षण काश्यम संहिता में निम्नरूप से अधिक पाया जाता है। **इत्येत त्रिविध सत्व तामस मोह सम्भवम्। यच्वा मेघ्यमकल्याण सर्व तच्चापि तामसं।।** अर्थात् जो कुछ भी अमेध्यकर एवं अकल्याणकर हो उसको तमोभाव जानना चाहिए।

यहाँ इस संदर्भ में यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि कोई भी व्यक्ति शुद्ध सात्विक, शुद्ध राजस या शुद्धतामस मन वाला नहीं होता, सामान्यत: सबका मन त्रिगुणात्मक ही होता है परन्तु जिस व्यक्ति का मन मूलत: (बार बार) जिस गुण का अनुवर्तन करता है गुण में विचारता रहता है। उसे उसी गुण वाला व्यवहारार्य कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का मन उसके पूर्वकृत कर्मों और आत्मा की स्थिति के अनुसार होता है जैसे–जैसे व्यक्ति भी वासनाओं का क्षय होता जाता है उसका मन भी तम से रज और रज से सत्व गुण की ओर अधिक सम्पन्न होता जाता है और अन्त में सत्व में मूलत: अधिष्ठित होने के बाद आत्मार्य समाहित हो जाने पर व्यक्ति को मन से मुक्ति मिल जाती है और उसे गुणातीतावस्था भी प्राप्ति होती है। ऐसा मनीषियों का मन है।

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है – सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; यह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है।

– महर्षि अरविन्द

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23 FEBRUARY-MARCH 2023

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंयाँ (फतेहाबाद) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥

(कठोपनिषद् 1.2.21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताभिलाषावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों की दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए भी वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।